Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

गिरमिट प्रथा : एक अमानवीय व्यवस्था के चंगुल में फंसे भारतीय प्रवासी मजदूरों की दास्ता

गौरव
शोध छात्र,
मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत।

Article Info
Volume 4 Issue 1
Page Number: 106-116

Publication Issue :
January-February-2021

Article History
Accepted : 02 Feb 2021
Published :15 Feb 2021

सारांश :- गिरमिट प्रथा, औपनिवेशिक लालच से उपजे, गरीब भारतीयों के अमानवीय शोषण का प्रतीक थी। इस प्रथा(व्यवस्था) से बंधकर गरीब भारतीय मजदूर अपने भविष्य की उज्ज्वल कामना लिए जहाजों पर चढ़ अनजाने समुद्री द्वीपों को निकल दिए। परन्तु, उन्हें वहाँ भविष्य उज्ज्वल नहीं, अंधकार से भरा मिला। दास प्रथा के 1833 ई. में ब्रिटिश साम्राज्य से समाप्त होने के साथ ही 1834ई. में उसका स्थान लेने के लिए गिरमिट प्रथा प्रारम्भ कर दी गयी। गिरमिट (एग्रीमेंट) की व्यवस्था के माध्यम से गुलामी की स्थिति को वैधानिकता का मुखौटा पहनाया गया। विभिन्न द्वीपीय उपनिवेशों के बागान मालिक गन्ने की खेती हेतु भर्ती एजेंसियों के माध्यम से अनुबंध-आधारित मजदूर भारत से आयात करने लगे। अनुबन्ध की शर्तें अनपढ़-गरीब किसान-मजदूरों के समझ के बाहर थीं। वे तो भर्ती करने वाले अरकाटियों के बहकावे में अपनी दरिद्रावस्था से छुटकारे की आस लिए अनुबन्ध-पत्र पर अंगूठा लगा, अपना वतन छोड़ समुद्र पार चले गए। "1834 से 1917 के मध्य 13 लाख से भी ज्यादा भारतीय मॉरीशस, त्रिनिदाद, गयाना, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका, व फीजी आदि द्वीपों में गिरमिटिया के रूप में गए।" [1] जो अपने वतन फिर कभी लौट न सके। गांधी सहित प्रमुख राष्ट्रवादी नेताओं ने भारतीयों के शोषण आधारित इस व्यवस्था को समाप्त करने हेतु लम्बा और राष्ट्रव्यापी आंदोलन किया। भारतीयों के तीव्र विरोध को देखते हुए भारत सरकार ने 1917 में देश से गिरमिटिया मजदूरों की भर्ती को समाप्त कर दिया।

मुख्यशब्द– गिरमिट प्रथा, अमानवीय, व्यवस्था, चंगुल,भारतीय, प्रवासी, मजदूर,दास्ता।

बीबीसी. ने *कोविड-19* महामारी के दौरान सिंगापुर में अनुबंध आधारित विदेशी कामगारों पर एक रिपोर्ट में उनकी दयनीय स्थिति का जो ब्यौरा दिया है। यह कोरोना काल की वजह से अत्यधिक भीषण हो सकता है, परन्तु सामान्य दिनों में भी मजदूरों की स्थिति को अमानवीय व शोषणपूर्ण ही कहा जा सकता है। एक मजदूर रिपोर्टर से कहता है-

[1]. आशुतोष कुमार, *भारतीय राष्ट्रवाद बनाम गिरमिट प्रथा,* प्रतिमान, अंक -10 पृष्ठ- 298.

Copyright : © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

"दिन हो या रात, हम इस एक कमरे में बंद है। यह दिमाग़ पर अत्याचार है। यह किसी जेल से कम नहीं है। हम ये नहीं कहते कि हमारे साथ यहाँ के नागरिकों जैसा बर्ताव किया जाय, पर इंसानों जैसे बर्ताव की उम्मीद तो हम करते ही हैं। जिससे हम कह सकें कि हम भी इंसानों के समाज का हिस्सा हैं।"[2]

'सिंगापुर में तीन लाख से ज़्यादा विदेशी श्रमिक बसें हैं, जिन्हें बहुत कम वेतन मिलता है। इनमें से ज्यादातर या तो भारत से हैं या फिर बांग्लादेश से.... ये मजदूर कम्पनी के शयनगृहों से कम्पनी की गाड़ियों द्वारा कार्यस्थल पर भेजे जाते हैं। वहाँ काम करते हैं , बीच में थोड़ा सा ब्रेक लेते हैं। फिर उसी तरह शयनगृहों में लौट आते हैं। शयनगृहों के एक कमरे में 20 लोगों का रहना सामान्य बात है। जहाँ न तो पर्याप्त जगह है न ही कोई निजता।' [3]

इस रिपोर्ट को पढ़ते हुए आँखों के सामने *कुली लाइन्स* के उन गिरमिटिया भारतीय मजदूरों का चित्र उभरकर सामने आ जाता है, जो ऐसी ही एक अनुबन्ध आधारित व्यवस्था में बंधकर अपने देश से दूर शोषण के भीषणतम रूपों का शिकार हुए। गिरमिटिया मजदूरों के रहने के स्थान के *कुली लाइंस* का यह विवरण सिंगापुर के मजदूरों के शयनगृहों का आभास कराता प्रतीत होगा..

"इनको एक बैरक में रखा जाता था। 10 फ़ीट लम्बे और 7 फ़ीट चौड़े कमरों में, फ़र्श नहीं होती थी, पर ये गोबर से लीपकर फ़र्श तैयार कर लेते थे। ऊपर लोहे का छप्पर होता था। हर कमरे में तीन लोग रहते थे। इसी कमरे में सभी का खाना-पीना सोना सभी था। यहाँ से यह सुबह सूर्योदय से पहले काम पर निकल जाते और शाम ढले वापस आते तो हाथ-पैर में फफोले पड़ जाते। अगले दिन फ़िर से फार्म पर जाना होता या पीठ पर सरदार के कोड़े खाने होते।"[4]

अनपढ़ मजदूर अपनी दु:खद स्थिति का बयान अपनी बोल-चाल की भाषा में गाये गीतों के माध्यम से करते थे। जिन्हें *बिदेसिया* [5] कहा जाता है। एक बिदेसिया गीत कुली लाइंस में उनकी दु:ख भरी कहानी कहता है-

"काली कोठरिया में बीते नहीं रतिया हो,
काहे से बताई हम पीर रे बिदेसिया।
दिन-रात बीती हमरी दु:ख में उमरिया,
सूखा सब नैन के नीर रे बिदेसिया।।" [6]

गिरमिट व्यवस्था [7]:-

---

[2]. यीवा थैन, *बीबीसी न्यूज,* 18 सितम्बर, 2020. (WWW.BBC.COM).

[3]. वही.

[4]. प्रवीण कुमार झा. *कुली लाइंस,* पृष्ठ- 91

[5]. बिदेसिया, सामूहिक रूप से गिरमिटिया मजदूरों के अपनी बोली में गाये गीतों को कहा जाता है। ये मजदूर पढ़े- लिखे नहीं थे।इन्होंने अपने गाँव-देश में प्रचलित बोली में अपने गीतों को गाया। इन मजदूरों में जो कुछ पढ़े- लिखे चले गए थे उन्होंने तथा बाद कि उनकी सन्तानो ने अपने पूर्वजों के सुने गीतों का संकलन लिखित रूप किया। ये गीत गिरमिटिया जींवन के दुखों-कष्टों का मार्मिक चित्रण करते हैं।

[6]. *कुली लाइन्स,* पृष्ठ- 91

[7]. *गिरमिट* शब्द अंग्रेजी भाषा के एग्रीमेंट का भोजपुरीकरण है। शर्तबंदी के तहत होने वाले एग्रीमेंट को ही अनपढ़ मजदूर गिरमिट कहते थे। इस गिरमिट के तहत जाने वाले प्रवासी मजदूर *गिरमिटिया* कहलाये। यद्यपि शरू में गिरमिटिया शब्द का

"यह इतिहास है विश्व के सबसे बड़े पलायन और आप्रवास का, जो लगभग भुला दिया गया। लाखों लोग जहाज से समंदर पार भेजे गए, ऐसे कागज़ो पर हस्ताक्षर करवाकर जिन्हें न वो समझ सकते थे, न पढ़ सकते थे। कहानी एक विशाल साम्राज्य के लालच और हिंदुस्तानियों के संघर्ष की।" [8]

– प्रवीण कुमार झा. (कुली लाइन्स)

भारत सरकार प्रत्येक वर्ष 9 जनवरी को *प्रवासी दिवस* के रूप में मनाती है। यह प्रवासी दिवस महात्मा गांधी के भारत आगमन (9 जनवरी, 1915) के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। हालांकि यह अपने आप में विचित्र है– एक प्रवासी व्यक्ति के गमन नहीं, अपितु आगमन की तिथि को प्रवासी दिवस के रूप में मनाया जाता है। ख़ैर! भारत विचित्रताओं का देश ही है।

प्रवास सभी जीवों की एक सामान्य क्रिया है। मनुष्य भी सभी जीवों की भाँति प्रवास करता है। प्रवास के विभिन्न कारण हो सकते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में प्राचीन काल से प्रवास होता रहा है। विभिन्न धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक कारणों से मनुष्य इस उपमहाद्वीप से बाहर जाता रहा है। "प्रवास एक दो तरफ़ा प्रक्रिया है। एक तरफ़ यह आर्थिक और सामाजिक बदलाव की प्रतिक्रिया है। वहीं दूसरी तरफ एक आने वाले बदलाव की उत्प्रेरक भी। जहाँ से लोग प्रवास कर रहे है और जहाँ को प्रवास कर रहे है।"[9]

यहाँ हमारा विषय गिरमिट व्यवस्था के अंतर्गत हुए भारतीय मजदूरों के प्रवास पर केंद्रित है। गिरमिटिया कौन थे? ये इस शब्द से किस प्रकार जुड़े ? इस पर कोई विशेष परिभाषा नहीं दी जा सकी है। *कार्टर* की परिभाषा के अनुसार, "गिरमिटिया वो लोग थे जिनके आने –जाने का टिकट खर्च उन्हें देना होता था और जो एक खास समय की मजदूरी के लिए खास जगह ले जाये जाते थे।"[10] वहीं ह्यूज़ टिंकर का कहना है कि यह प्रथा "गुलामी की नई व्यवस्था थी।"[11] गुलामी की नई व्यवस्था ? अत: इसका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में गुलामी प्रथा से अवश्य था। यह सम्बंध ढूढ़ने के लिए हमें गिरमिट व्यवस्था की उत्पत्ति पर नज़र डालनी पड़ेगी।

यहाँ हम दो अंतर्संबंधित विषयों की जाँच करेंगे जिनके माध्यम से गिरमिट व्यवस्था के जन्म पर प्रकाश पड़ेगा –

1. ब्रिटिश सामाज्य को गिरमिट व्यवस्था की आवश्यकता क्यों हुई?
2. भारतीयों द्वारा इस व्यवस्था के अपनाने की वजह क्या थी?

प्रयोग फ़ीजी प्रवासियों द्वारा ही किया जाता था। लेकिन हाल के वर्षों से गिरमिट तथा गिरमिटिया शब्द का प्रयोग शर्तबंदी प्रथा व उसके अधीन दुनियाँ के द्वीपों में जाने वाले सभी प्रवासी भारतीय मजदूरों के लिए किया जा रहा है।

[8]. *कुली लाइंस,* पृष्ठ– 13

[9]. सी. जे. लेविस, *ह्यूमन माइग्रेशन : अ जियोग्राफिकल पर्सपेक्टिव,* क्रोम हेम, लन्दन & केनबरा, 1982.

[10]. मरीना कार्टर, *वायसेस फ्रॉम इन्डेंचर : एक्सपीरियंसेज ऑफ़ इंडियन माइग्रेंट्स इन ब्रिटिश एम्पायर,* लीसेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966

[11]. टिंकर. ह्यूज, *न्यू सिस्टम ऑफ़ स्लेवरी : दि एक्सपोर्ट ऑफ इंडियन लेबर इन ओवरसीज 1830–1920,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1974.

पहले प्रश्न पर आते हैं। 1807 ई. से ब्रिटिश साम्राज्य में गुलामों का व्यापार प्रतिबंधित कर दिया गया था। जिन जहाज़ों पर ग़ुलाम पाए जाते, सौ पाउंड प्रति गुलाम का जुर्माना लगाया जाता। यह गुलामी प्रथा आख़िर बन्द क्यों की गयी? यह महज़ मानवता का सवाल भर नहीं था। पूंजीवाद के उदय के साथ यूरोप के सभी देश व्यापारिक पूंजीवाद के दौर में दास व्यापार से लाभान्वित हुए थे। परन्तु पूंजीवाद के अगले दौर- औद्योगिक पूंजीवाद की जरूरतें अपने पिछले व्यापारिक पूंजीवाद से भिन्न थीं। अब पूंजीवाद की रीढ़ व्यापारिक मुनाफ़ा नहीं, बल्कि औद्योगिक उत्पादन था। उद्योगों में प्रशिक्षित कामगारों की ज़रूरत थी, दासों या गुलामों की नहीं। कृषि क्षेत्रों में हुए प्रौद्योगिकी विकास ने मानव श्रम को महत्वहीन बना दिया था।

ब्रिटेन के साथ अन्य यूरोपीय देशों में भी गुलामी की प्रथा चल रही थी। परन्तु यह स्वयं ब्रिटिश साम्राज्य के लिए गले की हड्डी बन गए थे। अंग्रेज दुनिया भर में नैतिकता का ढोल पीटते फिरते थे। अत: कम फलदायी होती दास प्रथा के कलंक से उन्होंने अपना हाथ खींच लिया। वहीं *एरिक विलियम्स* का कहना है कि-

"जब ब्रिटेन का पूँजीवाद वेस्टइंडीज पर पूरी तरह निर्भर था, उन्होंने गुलामी प्रथा के विरोध पर ख़ास ध्यान नहीं दिया। पर जब इसी वेस्टइंडीज का एकाधिकार (मोनोपोली) उन्हें परेशान करने लगा, उन्होंने गुलामी प्रथा मिटा कर उनकी मोनोपोली ही खत्म कर दी।"[12]

ब्रिटिश संसद के 1833 ई. में पारित अधिनियम द्वारा 1 अगस्त 1834 से ब्रिटिश साम्राज्य में गुलामी प्रथा पूर्णत: प्रतिबंधित कर दी गयी। सभी गुलामों को मुक्त कर दिया गया। गुलामी प्रथा के अंत का समर्थन मानवतावादियों के साथ यूरोपीय औद्योगिक पूंजीपति वर्ग भी कर रहा था। परंतु इससे ब्रिटिश साम्राज्य के उन व्यापारियों और बागान मालिकों को घाटा हो रहा था, जो अपने कृषि कार्यों के लिए गुलामों के व्यापार और उनकी श्रम शक्ति पर निर्भर थे। उन्होंने ही गुलामी प्रथा के वैकल्पिक समाधान के रूप में *'अनुबन्ध आधारित मजदूरी'* की नई व्यवस्था का सूत्रपात किया। अनुबन्ध आधारित मजदूर व्यवस्था, जिसे ह्यूज टिंकर ने *'गुलामी की नई व्यवस्था'* कहा है, का जनक स्काट बागान मालिक विलियम ग्लैडस्टोन था।

अब हम अपने दूसरे प्रश्न पर आते हैं कि भारतीयों को क्या आवश्यकता थी गिरमिटिया बन समुद्रपार जाने की? *बर्टन* के अनुसार, "सबसे सस्ते मजदूरों की आपूर्ति के लिए चीन और भारत सबसे उपयुक्त देश थे।"[13] भारत की जनसंख्या अधिक थी उसकी अपेक्षा रोजगार के अवसर कम थे। जिसका कारण अंग्रेजों द्वारा भारत की अर्थव्यवस्था को औपनिवेशिक ढाँचे में बदल दिया जाना था। इसके अतिरिक्त भारतीय समाज में सामन्तवादी शोषण भी भारत को गिरमिटिया मजदूरों की भर्ती के लिए एक उपयुक्त देश बना देता था। भारत के किसान और शिल्पकार औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों की वजह से एकदम निर्धनता की स्थिति में पहुँच चुके थे। कृषि क्षेत्र पहले से ही अधिक जनसंख्या बोझ और मौसम आधारित निर्भरता के चलते संकट में था। इस पर भी सरकार के करों और जमींदारों के शोषण बढ़ते ही जाते थे। "औपनिवेशिक सरकार की विऔद्योगीकरण की नीतियों के फलस्वरूप भारतीय शिल्प उत्पादन के नष्ट हो जाने के कारण इन क्षेत्रों में काम कर रहे शिल्पकार व मजदूर बेरोजगार हो गए।"[14] उनकी दयनीय स्थिति के विषय में *लार्ड विलियम बैटिंग ने*

---

[12]. Williamsan, Eric. E., *Capitalism And Slavery*, University Of North Carolina Press, 1944.

[13]. वाल्टन लुक लाई, *इंडियन लेबर, कैरेबियन शुगर : चाईनीज एंड इंडियन माइग्रेंट्स टू द ब्रिटिश वेस्टइंडीज 1838-1918.*

[14]. प्रमिला सूरी, *ब्रिटिश उपनिवेशवाद का भारतीय हस्तशिल्प कलाओं पर प्रभाव,* (सत्या एम.राय द्वारा सम्पादित *भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद),* पृष्ठ- 115.

लिखा था, "कपड़ा बुनकरों की हड्डियाँ यहाँ हिंदुस्तान में बिखरी पड़ी हैं।"[15] ऐसी स्थिति में गरीब किसान- मजदूरों के सामने जीवन का संकट खड़ा हो गया था। "उद्योगों के नाश होने से कृषि क्षेत्र पर अतिरिक्त दबाव पड़ा, ग्रामीण ऋणग्रस्तता में वृद्धि हुई।"[16] इस स्थिति में गरीब जनता जमींदारों-साहूकारों के शोषण चक्र में बुरी तरह पिसने को मजबूर हुई। विल दुरान्त ने लिखा है, "गरीब किसानों को कर न देने पर लोहे के पिंजरों के बंद करके धूप में रखा जाता था। किसान करों का भुगतान करने के लिए अपने बच्चों तक को बेच दिया करते थे।"[17] उत्पादित अन्न में से कर देने के बाद इतना भी उनके पास नहीं बचता था कि पूरे परिवार का पेट भर सके।

बंगाल व दक्षिण भारत में उन्नीसवीं सदी में निरंतर अकाल पड़ते रहे थे। "ये अकाल किसी प्राकृतिक आपदा जनित न होकर औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों के परिणाम थे।" कुपोषण और भुखमरी एक सामान्य सा दृश्य बन चुका था। लोगों के पास पलायन के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं बचा था। इतनी संख्या में लोग मर रहे थे कि कार्नवालिस को कहना पड़ा कि "अब हमारी कम्पनी का एक तिहाई हिन्दुस्तान जंगल है, जहाँ बस जंगली जानवर रहते हैं।"[18] ये उस बंगाल की स्थिति है जो मुगल काल के सबसे समृद्ध प्रान्तों में से एक हुआ करता था। कम्पनी राज के 20 वर्षों में उसकी तुलना जंगलों से होने लगी।

अपनी इस स्थिति से मुक्ति का कोई भी अवसर चाहे वह उन्हें देश से बाहर लिए जाए, उन्हें मंजूर था। यहाँ पर उन्हें इस गरीबी और शोषण से मुक्ति की कोई आस न दिखाई देती थी। ग्रामीण मजदूर-किसान विदेश जाकर धन कमा कर अपने ऊपर लदे ऋण को खत्म करना चाहते थे। कोई इस ऋण की वजह से पीढ़ी दर पीढ़ी बेगारी करने पर मजबूर था। किसी की ज़मीन साहूकार के कब्जे में थी, जिस कारण वह अपनी ही जमीन पर मजदूरी करने को विवश था। उनकी इन सभी इच्छाओं को भर्ती कम्पनियों के एजेंटों ने खूब भुनाया। वे निरक्षर किसान-मजदूरों को तरह -तरह के प्रलोभन देकर अपने साथ ले जाने को राज़ी कर लेते थे। कई बार तो इस कार्य हेतु अपहरण तक किये जाते रहे। औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों, सामन्ती शोषण व जातिगत दबाव इत्यादि कारणों में मिलकर ऐसी परिस्थितियों की रचना कर दी थी, जिससे कि निर्धन किसान- मजदूरों का जीवन दयनीय हो चुका चुका था। इससे मुक्ति हेतु उसे जहां से भी थोड़ी सी आशा की किरण दिखी, वह उस तरफ़ दौड़ पड़ा।

गिरमिट व्यवस्था की कार्यप्रणाली :-

कलकत्ता में मजदूरों की भर्ती का कार्य करने के लिए पहले भी रिक्रूटमेंट एजेंसियां मौजूद थी। ग़ुलामी प्रथा की समाप्ति के बाद जब अनुबन्ध आधारित गिरमिटिया मजदूरों की मांग हुई तो इनकी संख्या रातों-रात बढ़ गयी। 1834 ई. में ही एग्रीमेंट द्वारा सर्वप्रथम *एटलस* जहाज से गिरमिटिया मजदूर कलकत्ता से मारीशस भेजे गए। यहाँ एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि भारत से पहले-पहल गिरमिटिया मजदूरों को समुद्रपार अंग्रेजों ने नहीं बल्कि फ्रेंच लोगों ने भेजना शुरू किया था।

---

[15]. जवाहर लाल नेहरू, डिस्कवरी ऑफ इंडिया, पृष्ठ- 324, से उद्धृत.

[16]. विपिन चंद्र., *भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास,* अनामिका पब्लिशर्स एन्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2014 पृष्ठ- 40.

[17]. शशि थरूर, ऐन एरा ऑफ डार्कनेस, पृष्ठ- 11.

[18]. *कुली लाइंस,* पृष्ठ- 28.

वह भी ब्रिटिश सरकार की जानकारी के बगैर। "1826 से 1830 ई. के बीच लगभग 3000 मजदूर फ्रांस ने भारत से चुराकर रीयूनियन द्वीप पर भेज दिए।"[19]

एग्रीमेंट अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू में तैयार होते थे। ये काफ़ी विस्तृत होते थे, जिसमें मजदूरों की सम्पूर्ण जानकारी से लेकर सेवा व भुगतान की तमाम शर्तें लिखी हुई होती थी। जहाँ तक कानूनी पक्ष का सवाल है तो इसमें किसी प्रकार का दबाव या शोषण नहीं दिखाई देता है। एग्रीमेंट दोनों पक्षों (मजदूर व रिक्रूटमेंट एजेंसी) की आपसी सहमति के आधार पर तैयार होता था। इसकी वैधता और प्रमाणन 'प्रोटेक्टर आफ इमिग्रेंट्स'[20] करते थे। परंतु वास्तविकता यह थी कि मजदूर पढ़े-लिखे नहीं थे कि वे अनुबंध में लिखी बातें समझ सकते। जो मजदूर एग्रीमेंट को एग्रीमेंट न बोलकर गिरमिट बोलता हो, वह क्या उसकी शर्तें समझेगा। दूसरी तरफ़ गिरमिटिया मजदूरों के मालिक शायद ही कभी उन शर्तों का पालन करते हों, जिस आधार पर उन्होंने मजदूरों को प्राप्त किया था।

सामान्यत: एग्रीमेंट में चार मुख्य बिंदु होते थे-

1. मजदूर और भर्ती एजेंट भारत सरकार के एक ख़ास अधिकारी की उपस्थिति में अनुबंध पर हस्ताक्षर करेंगे। (मजदूर अंगूठा ही लगाते थे)
2. अनुबन्ध पाँच साल का होगा, जिसे पाँच साल बाद फिर से पाँच साल के लिए बढ़ा सकते हैं।
3. मजदूर को अनुबन्ध खत्म होते ही वापस कलकत्ता भेजा जाएगा।
4. जो भी जहाज उन्हें ले जाएगा, उसमें सफाई और भोजन की उचित व्यवस्था होगी, साथ ही एक डॉक्टर अवश्य होगा।

शर्तें हर ब्रिटिश उपनिवेश के लिए अलग-अलग होती थी। मॉरीशस में एक साल का एग्रीमेंट था जो बाद में तीन साल का हो गया। वेस्टइंडीज के लिए दस साल का एग्रीमेंट होता था। अनुबन्ध की अवधि भारत से इन द्वीपों की दूरी, मजदूरों की उपलब्धता के साथ ही अन्य कारकों पर भी निर्भर करती थी।

गिरमिटिया मजदूरों की भर्ती का कार्य स्थानीय स्तर पर जो एजेंट करते थे, वो अरकाटी कहलाते थे। ये आधिकारिक एजेंट न होकर कमीशन आधारित दलाल थे। जो आधिकारिक एजेंटों को मजदूर उपलब्ध करवाते थे। ये अरकाटी गाँवों-क़स्बों में जाकर गरीब किसान-मजदूरों को बहला-फुसला कर भर्ती होने के लिए तैयार कर लेते थे। ये अपने प्रपंचों से ऐसा मनमोहक जाल बुनते थे जैसे कि वे द्वीप स्वर्ग की प्रतिकृति हों। अपनी गरीबी और दु:ख से त्रस्त उन ग्रामीणों के लिए सब कुछ स्वप्न के साकार होने जैसा था। अरकाटी मेलों, मंदिरों, पानी के कुंओ, दुकानों, हाट, बाजारों इत्यादि स्थानों पर छिपे रूप में घूमते थे। स्थानीय जमींदार इन अरकटियों के ख़िलाफ़ होते थे। क्योंकि ये उनके मजदूरों और किसानों को उनके चंगुल के गायब कर देते थे। समय के साथ जब गिरमिटिया शोषण की कहानियाँ गाँव में पहुँचने लगीं तो सारा ग्रामीण समाज इनके ख़िलाफ़ रहने लगा।

भारत से गिरमिटिया मजदूरों के प्रवसन का कोई एक आधिकारिक कारण तलाश करना संभव नहीं है। महज़ गरीबी और आर्थिक-सामाजिक शोषण के आधार पर इसकी प्रकृति का निर्धारण करना, अपनी दृष्टि और इस विषय की

---

[19]. वही, पृष्ठ- 59.

[20]. 'प्रोटेक्टर ऑफ इमिग्रेंट्स', भारतीय औपनिवेशिक सरकार का प्रतिनिधि एवं उसके द्वारा नियुक्त अधिकारी था। जो मजदूरों के हितों का लिए कार्य करने हेतु नियुक्त था। परन्तु शायद ही कभी इसने मजदूरों के हितों के लिए सक्रिय रूप से कार्य किया हो। ये अधिकारी रिक्रूटमेंट एजेंसियों के साथ सांठ-गांठ किये हुए होते थे। यही कारण है कि पूरे गिरमिटिया काल में मजदूरों के साथ छल- कपट व जोर-जबरदस्ती के अनुबंध किये जाते रहे।

विविधता को सीमित करना होगा। गरीबी और शोषण निश्चित रूप से प्रमुख कारण थे परन्तु पारिवारिक कलह, शीघ्र अमीर होने का स्वप्न, मानव तस्करी इत्यादि कारणों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। तत्कालीन भारत के लोग समूह में रहने वाले स्थानीय परम्पराओं से बँधे मनुष्य हुआ करते थे। उनके लिए अपने गाँव–देश को छोड़कर विदेश जाना निश्चित रूप से आसान नहीं रहा होगा। "उन दिनों हिंदुस्तानी तबका अपना घर–बार छोड़कर भागना नहीं चाहता था। ये बड़े सांस्कृतिक ग्रामीण थे। झुंड में जीने वाले, इन्हें झुंड से अलग करने के लिए बहुत पापड़ बेलने पड़ते थे।"[21]

एक शोध के अनुसार अधिकतर लोगों के गिरमिटिया के रूप में विदेश जाने का कारण पैसा नहीं था।[22] पारिवारिक कलह और शोषण स्त्रियों के पलायन का एक प्रमुख कारण था। भारत में बाल विवाह एवं बेमेल विवाह का एक दुष्परिणाम यह था कि बालिकाएं कम उम्र में ही विधवा हो जाती थी। विधवा के जीवन के कष्टों का कोई अंत न था। एक प्रकार से उसका सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था। उसकी सामाजिक–आर्थिक सुरक्षा की गारंटी उसके पति के मृत्यु के बाद समाप्त सी हो जाती थी। ये विधवाएँ या तो घर में या विधवा आश्रमों में शोषण का शिकार होती रहती थी। यह भारतीय समाज का एक स्याह पक्ष है कि बहुत सी विधवाएं अपने घर से विधवा आश्रम को भेजी गई, और फिर उनकी चिंता किसी को न रही। वे अपने जीवन यापन के लिए मजदूरी, भिक्षावृत्ति से वेश्यावृत्ति जैसे निकृष्ट काम करने को मजबूर हुई। यहाँ एक सामाजिक अंतर भी देखने को मिलता है। गिरमिटिया के रूप में विदेशी टापुओं पर जाने वाली महिलाओं में उच्च जाति की महिलाओं की संख्या अधिक थी। "1898 में दो तिहाई उच्च जाति की गिरमिटिया महिलाएं थी।"[23] इसका कारण यह था कि निम्न जाति की महिलाओं के लिए भारत में काम के अवसर थे, परन्तु उच्च जाति की महिलाओं के सम्बंध में ऐसा नहीं था। उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा के चलते उनके घर–परिवार वाले उन्हें बाहर काम को न जाने देते थे। ऐसे में वे अपने सभी बंधनों को तोड़ बहुत दूर निकल आयी, समुद्री टापुओं पर। उन्हें क्या पता था जहाँ वह मुक्ति की कामना लिए जा रही है, वहाँ एक दूसरा बंधन उनके इंतजार में है।

अरकाटी एजेंट गिरमिटियों को फँसा कर सब डिपो (रिक्रूटमेंट आफिस) लाते, यहाँ पहुँचते ही गिरमिटियों को एक तरह से बन्दी बना लिया जाता था। यहाँ पर लाइसेन्स धारी एजेंट होते थे जो मजदूरों को मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत करते थे। इसी मजिस्ट्रेट के सामने अनुबंधपत्र पर हस्ताक्षर किया जाता जाता था। अनुबंधपत्र में मजदूरों के नाम, उम्र, पिता का नाम, पता, डिपो का नाम, वेतन और कांट्रेक्ट की प्रस्तावित अवधि लिखी होती थी। सभी गिरमिटियों को पंक्ति में मजिस्ट्रेट के सामने लाया जाता, वो बिना समझे–बूझे अपने अंगूठे लगाते, और आगे बढ़ जाते।

सब डिपो से गिरमिटिया मजदूरों को कलकत्ता के मुख्य डिपो लाया जाता था। यहाँ सभी का स्वास्थ्य परीक्षण होता था। यहाँ से उन्हें जहाजों पर चढ़ा कर विभिन्न ब्रिटिश बागान कालोनियों में भेज दिया जाता था। प्रत्येक गिरमिटिया जब जहाज पर चढ़ता तो उसके गले में कैदियों की तरह एक नंबर प्लेट टँगा होता था, जिसे *टिन टिकट* कहा जाता था। यही पूरे सफ़र में उसकी पहचान होती थी।

जहाज से से उतारकर मजदूरों को एक महीने तक अलग द्वीप पर रख जाता था। इसके पश्चात नहला–धुला कर उनकी अर्धनग्न फोटो ली जाती थी, जिसे देखकर बागान मालिक उन्हें चुनते थे। यहाँ पर उनका पुन: पंजीकरण होता था, इसके पश्चात एक पक्का अनुबंधपत्र तैयार किया जाता था। यह अनुबंधपत्र भारत मे तैयार किये गए

---

[21]. *कुली लाइन्स*, पृष्ठ– 32

[22]. गिलियन, के. एल., *फ़िजी इंडियन माइग्रेंट्स*

[23]. गायुत्रा बहादुर, *कुली वीमेन* : द *ओडिसी ऑफ इन्डेंचर*

अनुबंधपत्र से भिन्न हो सकता था। यह उनके साथ साफ तौर पर धोखेबाजी थी। परन्तु अशिक्षित ग्रामीणों को न तब अनुबंधपत्र पत्र में लिखी बातें पता थी न अब ही लिखी बातें।

यहाँ से गिरमिटिया बागान मालिकों के साथ उनके कृषि फार्मों पर चले जाते। उन्हें कुली लाइन्स में रखा जाता और कृषि फार्मों में काम कराया जाता था। ये दो ही स्थान अगले पाँच से दस साल के लिए उनकी पूरी दुनिया होते थे। यदि वे इतने सौभाग्यशाली हुए कि उन्हें जेल और अस्पताल न जाना पड़ा हो। यदि वे यहां से भागने की कोशिश करते तो उनके लिए प्रस्तावित दंड को देखकर उनकी स्थिति का आंकलन किया जा सकता है–

" एक बार भागने पर एक कान काट लिया जाता था, दूसरी बार भागने पर दोनों कान, तीसरी बार भागने पर गोली मार दी जाती थी।"[24]

अनुबन्ध की अवधि पूरी होने पर विभिन्न ब्रिटिश कालोनियों के नियम अलग–अलग थे। "मॉरीशस में वेतन का पाँचवा हिस्सा रख लिया जाता और इसी पैसे को जोड़कर उनकी वापसी का टिकट दिया जाता था। यदि वे नहीं लौटना चाहते तो उन्हें पैसे वापस दे दिए जाते थे। वेस्टइंडीज में वापसी का टिकट दिया जाता था, परन्तु दस साल के बाद।"[25] अमूमन अधिकतर मजदूर वापस नहीं लौटते थे। वे प्राप्त पैसे से वहीं खेती–बाड़ी या अन्य कोई कार्य करके अपने नए जीवन के नींव बनाते थे। जो वापस लौटे, कुछ अपवादों को छोड़कर जिस गरीबी में गए थे उसी गरीबी में वापस लौटे। यहाँ स्वदेश वापस लौटने पर उनके कष्ट कुछ कम न थे ।अपनी जाति से बहिष्कृत हो चुके होते थे। शादी–ब्याह आदि में सामाजिक प्रतिबन्ध बहुत कठोर थे। इन रूढ़ियों ने बहुत से गिरमिटियों को पुन: वापस गिरमिटिया बन, बागान द्वीपों पर जाने को मजबूर किया। इसी के साथ गिरमिटिया मजदूरों की वापसी को हतोत्साहित भी किया। गिरमिटिया उन द्वीपों को ही अपनी नई दुनिया मानकर वहीं बस गए। आज इन द्वीपों का भारतीय डायसपोरा इन्ही गिरमिटिया मजदूरों के वंशज हैं।

गिरमिटिया दु:ख की दास्तान :–

अधिकांश व्यक्ति जो गिरमिटिया के रूप में विदेशी टापुओं पर गए , वे अपने वर्तमान जीवन के दु:खों से मुक्ति व एक सुखमय जीवन की कामना के साथ गए थे। परंतु वे अपने कष्टों के निवारण में और अधिक कष्टमय जीवन में प्रवेश कर गए। गिरमिटियों के जीवन की दास्तान को तीन शब्दों में स्पष्ट किया जा सकता है– छल, शोषण व दु:ख की न खत्म होने वाली दास्तान। अरकाटी गाँव–कस्बों से उन गरीब व शोषित व्यक्तियों को अच्छी नौकरी व जिंदगी के सब्जबाग दिखाकर अपने साथ आने को राज़ी कर लेते थे। जब ये गरीब लोग डिपो पर पहुंचते तो उन्हें सच्चाई का भान होता था, पर तब तक देर हो चुकी होती थी। वे बंधक बना चुके होते थे। जो अनुबंधपत्र पर अंगूठा लगाने को राज़ी नहीं होते थे, उन्हें डरा–धमकाकर, मार–पीट कर मजिस्ट्रेट के सामने जाने से पहले राज़ी किया जाता था। यहाँ से गिरमिटियों के साथ छल–कपट का दलदल शुरू होता था जिसमे वो धँसते ही चले जाते थे। इससे मुक्ति का कोई रास्ता नहीं था। उन्हें अपनी जाति–धर्म यहाँ तक कि स्वयं को भी मिटा देना होता था। उन्हें भेड़ बकरियों की तरह जहाजों में भरकर विभिन्न बागान द्वीपो पर

[24]. रिचर्ड एलेन, *स्लेव्स, फ्रीडम एंड इंडेंचर्ड लेबर इन कोलोनीयल मॉरीशस,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1980.

[25]. *कुली लाइन्स,* पृष्ठ– 51

भेज दिया जाता था। मजदूर डर से दुबके सहमे जहाजों पर चढ़ जाते। बहुत सारे अपनी मुक्ति हेतु किनारे समुद्र में कूद जाते, कुछ आगे सफर में समुद्र में कूदकर आत्महत्या कर लेते थे।

गिरमिटियों को कभी भी उनके अनुबंधपत्र के अनुसार कार्य स्थिति व जीवन स्तर प्राप्त होता था। उनसे नियत समय से अधिक काम व निश्चित वेतन से कम पैसा दिया दिया जाता था। उनके खाद्यान्न बहुत घटिया किस्म के होते थे। उनके रहने के स्थान कुली लाइन्स में हमेशा गन्दगी व महामारियां पसरी रहती थीं। इस जीवन व कार्य स्थिति में जहाँ काम अत्यधिक लिया जा रहा हो व पौष्टिक भोजन एवं स्वच्छ परिवेश के अभाव हो, मजदूरों की मृत्यु दर अधिक होती थी।

गिरमिटियों ने अपने दुखों को अपने लोकगीतों में व्यक्त किया है जिसे *बिदेसिया* के रूप में जाना जाता है। इन बिदेसिया गीतों में गिरमिटियों के शोषण व उनके दुखों का मार्मिक दृश्य उभर कर सामने आया है। इन्हें अनपढ़ गिरमिटिया अपनी बोल–चाल की भाषा में गाते थे। इनमें उनके वर्तमान दु:ख व पीछे छूट चुके अपने देश–समाज की पीड़ा उभर कर सामने आती है। सभी *कुली*[26] शाम को अपने कामों के बाद मिलकर इन्हें गाते और अपने पुराने दिनों को जबकि वे अपने देश मे थे, पश्चाताप करते कि आख़िर क्यों वे अरकाटी दुष्टों के बहकावे में आये।

अरकटियों के छल के विषय मे वे अपने गुस्से को प्रकट करते हुए कहते है–

" ओ रे अरकाटी ! तोहार दिल है काला,
तोहरी बात है झूठी।
बोली भले मीठी और लगे सच्ची,
पर खाली करे है बरबाद और बदनाम,
हम लोगन के अच्छा नाम।।"[27]

औरतें अपनी बिदेसिया गाते–गाते रो पड़ती थी–

"भाग आयी मैं देस से, पीछे छूटल जबरिया।
मरजी भरती वाले, मेरी सूनी कर दे सेजरिया।।"[28]

औरतों पर काम का बोझ ज्यादा होता था, उनके साथ ज़्यादती अंग्रेज सरदार और भारतीय कूलाम्बर दोनों ही करते थे। उनके लिए महिलाएँ अपनी विदेसिया में गीत गाती थी–

"टूट मरे हम काम में हो रामा,
फिर भी झिड़की लगाये रे बिदेसिया,
खून– पसीने से सींचे हम बगिया,
बैठे–बैठे हुकुम चलाये रे बिदेसिया।।"[29]

---

[26]. *कुली,* एक तमिल शब्द है। इसका अर्थ है 'काम के बदले पैसा'। कुली का पहला प्रयोग सम्भवत: कोरोमण्डल तट पर पुर्तगालियों ने किया,और उनसे बाक़ी यूरोपीय भी बाद में सीख गए। इस शब्द का प्रयोग उन मजदूरों के लिए था जो पैसे के लिए छोटे स्तर का काम करते थे।

[27]. *कुली लाइन्स,* पृष्ठ– 35

[28]. *वही,* पृष्ठ– 100

[29]. *पंडित गुरुदयाल शर्मा, मेमोरीज़ ऑफ़ फ़िजी 1887–1987,* सुवा, 1987, (उध्दृत– कुली लाइन्स, पृष्ठ–92.)

गिरमिटियों के साथ जानवरों जैसा व्यवहार किया जाता था। उनसे हद तोड़ काम लिया जाता था। छोटी से छोटी गलती पर भी मारा- पीटा जाता था। "चाबुक तो दरअसल एक रस्म थी। शायद ही कोई गिरमिटिया हो जिसने चाबुक न खाई हो। सुबह 3 बजे न उठे तो चाबुक, खेतों में मनमौजी किये तो चाबुक, कोई नियम टूटा तो चाबुक, जोर से हंसे तो चाबुक, रोओ तो चाबुक।।"[30]

गिरमिटियों के शोषण को देखकर भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने भारत से गिरमिटियों के भेजने का विरोध करना शुरू किया। फिजी से *कुंती की चिट्ठी* तथा तोताराम के विवरणों ने देश को इस प्रथा का विरोध करने के लिए लामबंद कर दिया। महात्मा गांधी, सरोजनी नायडू, गोपाल कृष्ण गोखले, महामना मदन मोहन मालवीय आदि नेताओं ने ब्रिटिश भारतीय काउंसिल व बाहर देश मे इस प्रथा को समाप्त करने के लिए सरकार पर दबाव डाला। अंततः 12 अप्रैल, 1917 को ब्रिटिश भारतीय सरकार ने भारत से गिरमिटिया मजदूरों की भर्ती पर पूर्णतः रोक लगा दी। इस तरह 80 वर्षों से अत्यधिक समय से चली आ रही इस अमानवीय प्रथा का अंत हुआ। जो मजदूर अभी गिरमिटिया के रूप में अनुबंधित थे, उन्हें भी 1921 में स्वतंत्र कर दिया गया।।

मॉरीशस के पोर्ट लुईस के आप्रवासी घाट पर कुछ इस तरह की पंक्तियाँ अंकित है-

"इतिहास ने जिसके लिए न छोड़ा कोई गवाह,
इतिहास ने जिसकी कथा पूरी नहीं सुनायी,
जिसने इस मिट्टी को सींचा अपने पसीने से,
और पत्थरों को बदला सोने के लहलहाते खेतों में,
पहला गिरमिटिया, इस मिट्टी का बेटा था,
वो हमारा था, आपका था, हम सबका था।।"[31]

संदर्भ :-

1. आशुतोष कुमार, *कुलीज आफ द एम्पायर,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2017.

2. जवाहर लाल नेहरू, *डिस्कवरी ऑफ इंडिया,* पेंग्विन रैंडम हाउस इंडिया, गुरुग्राम, संस्करण-2010. (प्रथम संस्करण 1946)

3. जार्ज डब्ल्यू. बर्टन, *अवर इंडियन वर्क इन फ़िजी,* मेथोडिस्ट मिशन प्रेस, 1909.

3. शशि थरूर, *ऐन एरा ऑफ डार्कनेस : द ब्रिटिश एम्पायर इन इंडिया,* एल्फ बुक कम्पनी, नई दिल्ली, 2016 (प्रथम संस्करण)

4. प्रवीण कुमार झा, *कुली लाइंस,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019 (प्रथम संस्करण)

5. विपिन चंद्र, *भारत मे आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव एवं विकास,* अनामिका पब्लिशर्स एन्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2019, (प्रथम संस्करण 1966)

6. सत्या. एम. राय, *भारत मे उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद,* हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2013 (प्रथम संस्करण 1983)

---

[30]. जार्ज बर्टन, *फ़िजी ऑफ टुडे,* चार्ल्स एच. केली,1910.

[31]. *कुली लाइन्स,* पृष्ठ- 34

7. सुमित सरकार, *मॉडर्न इंडिया : 1885–1947,* मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली, 2005. (प्रथम संस्करण 1883)
8. रिचर्ड एलेन, *स्लेव्स, फ्रीडम एंड इंडेंचर्ड लेबर इन कोलोनीयल मॉरीशस,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज, 1980.
9. अभय कुमार दुबे (संपादक), प्रतिमान पत्रिका, (अंक– 10,जुलाई–दिसम्बर 2017), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,
10. गयुत्रा बहादुर, *कुली वीमेन : द ओडिसी ऑफ इन्डेंचर,* हॉस्टर कंपनी, 2013.
11. तोताराम सनाढ्य, *फ़िजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष, राजकमल प्रकाशन,* नई दिल्ली 2002, (प्रथम संस्करण1914)
12. मरीना कार्टर, *वायसेस फ्रॉम इंडेंचर, एक्सपीरियंसेज ऑफ इंडियन माइग्रेंट्स इन द ब्रिटिश एम्पायर,* लीसेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966.
13. ह्यूज टिंकर, *न्यू सिस्टम ऑफ स्लेवरी : द एक्सपोर्ट ऑफ इंडियन लेबर इन ओवेसीज 1830–1920,* ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, आक्सफोर्ड, 1974.
14. राजेन्द्र प्रसाद, *टियर्स इन पैराडाइज : सफरिंग्स एन्ड स्ट्रगल ऑफ इंडियन इन फिजी 1879–2004,* ग्लेड पब्लिशर्स, 2004.
15. एरिक ई. विलियम्स, *कैपटलिज्म एंड स्लेवरी,* यूनिवर्सिटी ऑफ नार्थ कैरोलिना प्रेस, 1944.
16. बृज वी. लाल, *चलो जहाजी : अ जर्नी थ्रो इंडेंचर इन फ़िजी,* फ़ीजी म्यूजियम, सुवा।
17. लक्षमण सिंह, *कुली प्रथा अर्थात् बीसवीं शताब्दी की गुलामी,* प्रकाशक स्वामी नारायण मिश्र, प्रताप कार्यालय, कानपुर, 1916.
18. सी. एफ. एंड्रयूज और डब्ल्यू. डब्ल्यू. पियर्सन, *रिपोर्ट आफ इन्डेंचर्ड लेबर इन फ़िजी : एन इंडियन इन्क्वायरी,* इलाहाबाद,1916.
19. चिन्मय तुम्बे, *मूविंग इंडिया : अ हिस्ट्री ऑफ माइग्रेशन,* पेंग्विन रैंडम हाउस, नई दिल्ली, 2018.